4

बाज़ारीकरण का शिक्षा की भाषा नीति पर प्रभाव

अरुंधति*

समाज में भाषा न सिर्फ़ अभिव्यक्ति का माध्यम है, बल्कि भाषा वह माध्यम है जिससे हम अपने समय-समाज के परिवर्तनों को भी समझ सकते हैं। भाषा पर समाज के साथ-साथ संस्कृति, व्यवहार और सत्ताधीश शक्तियों का भी व्यापक प्रभाव होता है। भाषा की भूमिका के इस संदर्भ को समझने के लिए आज की जटिल परिस्थितियों की जटिलता को भी समझना होगा। इक्कीसवीं सदी की परिस्थितियाँ बीसवीं सदी से काफ़ी अलग हैं। आज हमारा समाज *कॉम्प्लेक्सिव* समाज है। भूमंडलीकरण ने सारी परिस्थितियों को बदल कर रख दिया है। बाज़ार से अलग किसी भी तत्त्व का स्वायत्त अस्तित्व नहीं रहा है। आज अमेरिकी संस्कृति के प्रभाव में अन्य संस्कृति एवं सभ्यताओं पर अस्तित्व का खतरा उत्पन्न हो गया है। आज शिक्षा के संदर्भ में इस संस्कृति के नकारात्मक प्रभाव को समझना बहुत आवश्यक है। भूमंडलीकरण के बाद धीरे-धीरे ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हो गयी हैं कि आज पूरा विश्व 'बाज़ार' द्वारा प्रचारित संस्कृति को ही अपनाने में लगा हुआ है। व्यवहार, रहन-सहन, मनोरंजन और भाषा तक आज इस प्रभाव से बच नहीं पाए हैं। यह दौर दूसरी गुलामी का दौर है। आज हम बाज़ार के माध्यम से उपनिवेश बनाए जा रहे हैं। इस उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया मानसिक स्तर पर लागू की जा रही है इस कारण इसके परिणाम और अधिक घातक सिद्ध हो रहे हैं। यही कारण है कि विकासशील देशों की भाषाओं और संस्कृति पर खतरा मँडरा रहा है। हम जब तक इन खतरों को समझने में सक्षम नहीं होंगे तब तक इससे बचने के लिए स्वयं को तैयार नहीं कर पाएँगे।

1990 में सोवियत रूस के विघटन और उसके पश्चात् भूमंडलीकरण के उत्थान से तेज़ी से वैश्विक परिवेश में बदलाव आया है। आज की परिस्थितियाँ बीसवीं सदी की औपनिवेशिक स्थितियों से बहुत भिन्न हैं। बाज़ार हमारे समाज को संचालित कर रहा है। बाज़ार ने आज लगभग हमारे सभी तत्त्वों को निर्धारित करना शुरू कर दिया है। हम ज़रूरतों को पूरा करने के लिए बाज़ार के पास नहीं जाते, बल्कि बाज़ार अपने अनुकूल हमारी ज़रूरतों को बना देता है। आज तकनीक पर आवश्यकता से अधिक हमारी निर्भरता इस बात का

* *शोधार्थी*, जामिया मिलिया इस्लामिया यूनिवर्सिटी, नयी दिल्ली (मकान सं. A 158, द्वितीय तल गली नं – 11 रोड नं – 4 महिपालपुर दिल्ली)

प्रमाण है। शिक्षा भी आज बाज़ार की आवश्यकता अनुसार ही ढलने लगी है। विशेषकर विकासशील देशों के संदर्भ में शिक्षा पर बात की जाए तो आज शिक्षा का मकसद रोज़गार उपलब्ध कराने तक सीमित होता जा रहा है। शिक्षा का एक वृहत्तर संदर्भ होता है। मानवीय मूल्यों की समझ, नैतिकता, भविष्य के प्रति ज़िम्मेदारी, अपनी सभ्यता संस्कृति के प्रति समझ और उसके प्रति ज़िम्मेदार होने के साथ-साथ बेहतर मनुष्य-निर्माण की ज़िम्मेदारी भी शिक्षा पर ही होती है। शिक्षा मनुष्य के विकास का प्रारंभिक चरण होती है जिसके साथ उसमें अनुभव के साथ निर्णय लेने की क्षमता भी उत्पन्न होती है। आज जब हम यह कह रहे हैं कि शिक्षा की भूमिका केवल रोज़गार तक सीमित हो रही है तब यह भी ध्यान देना होगा शिक्षा की व्यापकता पर भी असर पड़ रहा है। शिक्षा नीति निर्धारण के संदर्भ में हम पिछले दो दशकों की नीति निर्धारण प्रक्रिया को देखें तो यह बात समझ आती है कि शिक्षा के केंद्र में रोज़गार को स्थापित किया जा चुका है। विश्व बैंक की नीति के तहत विकासशील देशों पर यह दबाव बनाया जाता है कि वह अपनी भूमिका को इन्हीं संदर्भो में केंद्रित करें। शिक्षा की इस सीमित भूमिका का प्रभाव हमारे आने वाले भविष्य पर बहुत नकारात्मक पड़ने वाला है।

मनुष्य की संस्कृति-निर्माण का एक व्यापक ऐतिहासिक परिपेक्ष्य होता है। किसी भी सभ्यता या संस्कृति का विकास रातों-रात नहीं होता। संस्कृति के साथ कई गरिमामयी भूमिकाएँ और योगदान जुड़े होते हैं। हमारा खान-पान, रहन-सहन, व्यवहार, रीति-रिवाज, मान्यताएँ, पहनावा, ज्ञान और भाषा सभी एक लंबे विकास प्रक्रिया के तहत सृजित होते हैं। जब कोई अन्य संस्कृति अथवा सभ्यता अपनी संस्कृति दूसरों पर थोप देती है तब वह एक संस्कृति को समूल उखाड़ फेंकने का प्रयास करती है। यह मानसिक गुलामी का परिचायक है। हमें मजबूर किया जाता है कि हम अपनी सहज क्रियाओं को छोड़ उन क्रियाओं को अपनाएँ जिसके लिए हमारा वातावरण या व्यवहार अनुकूल नहीं होता। पश्चिमी बाज़ार का अनुकरण करना ऐसी ही प्रक्रिया है। क्योंकि आज बाज़ार में पूँजी पश्चिमी देशों की अधिक है और वह हमें मजबूर कर रहे हैं कि अपनी सहजता का त्याग कर उनके द्वारा प्रदत्त व्यवहार का अनुसरण करना प्रारंभ कर दें। अठाहरवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में इस मंशा के तहत लैटिन अमेरिकी देशों पर यूरोपीय देशों ने अपनी संस्कृति थोप दी। आज लैटिन अमेरिकी देश अपनी संस्कृति को पुनर्सृजित करने का प्रयास कर रहे हैं। हमारी संस्कृति इतनी मज़बूत और सशक्त रही है कि इसने कई सहसंस्कृतियों को समायोजित किया है। विश्व की पुरातन संस्कृति के रूप में यह अपनी ख्याति बनाये हुए है। बाज़ारवादी संस्कृति ने हमारी विरासत पर प्रभाव डालना शुरू कर दिया है। अच्छी कलाओं का अंत होने लगा है। बाज़ार के अनुरूप जो नहीं ढल पा रहा रहा है, उसका अंत होता जा रहा है। हमारी रुचियों में भी बदलाव होने लगा है। आज सभी कलाओं यहाँ तक कि शिक्षा का व्यवहार भी बाज़ार ही निर्धारित कर रहा है। शिक्षा के केंद्र में अब मूल्य नहीं हैं, बल्कि मुद्रा है। हमारे अंदर एक डर बैठा दिया गया है कि हम पैसा कमाने में असफल होंगे तो हम हर तरह से पिछड़ जाएँगे। वर्चस्ववादिता के इस दौर

में वर्चस्व की होड़ का निर्धारण मुद्रा से ही होता है। हम अतिशय मुद्रा-केंद्रित होते जा रहे हैं। इस कारण हम अपनी संपदाओं को भूलते जा रहे हैं या भूलने के कगार पर हैं। यह सब भाषा और संस्कृति के माध्यम से किया जा रहा है — 'और आज के भूमंडलीकरण के संदर्भ में देखें, तो शासक वर्ग वह है, जिसका वैश्विक बाज़ार पर कब्ज़ा है और यह शासक वर्ग जानता है कि वैश्विक बाज़ार पर उसका कब्ज़ा तभी तक रह सकता है, जब तक वह इंसान के दिमाग को लगातार बाज़ार के लिए तैयार करता रहे।' इस मानसिकता को बनाने के लिए इस वर्चस्ववादी सत्ता ने शिक्षा को हथियार बनाया है। इस मानसिकता के बने रहने से ही बाज़ार का वर्चस्व बना रह सकता है। शिक्षा के परिणाम दूरगामी होते हैं इसलिए आज शिक्षा को बाज़ार अपने हितों के अनुसार ढालता जा रहा है। यही कारण है कि आज शिक्षा के क्षेत्र में निरंतर गिरावट आ रही है। सृजनात्मकता और रचनात्मकता में कमी आ रही है। अपनी भाषा और देशजता के प्रति लोगों में सम्मान कम होता जा रहा है। अपनी भाषा और संस्कृति से दूर होने के कारण एक बड़ी संपदा की महत्ता को समझने में आज हम असफल हैं।

पश्चिमी संस्कृति के अनुसरण के कारण ही पश्चिमी शिक्षा को आदर्श शिक्षा माना जाने लगा है। इस स्थिति में हम अपने अहितों को भी नहीं समझ पा रहे। हमारी भावी पीढ़ी पश्चिमी मानसिकता की गुलाम होती जा रही है। उसमें अपनी स्थानीयता के प्रति गौरव का भाव समाप्त होता जा रहा है। एक बड़ी ज्ञान संपदा इस मानसिकता के कारण हम खोते जा रहे हैं। मातृभाषाओं के प्रति उपेक्षा का भाव इसी मानसिकता की देन है। मानसिकता की यह लड़ाई दरअसल वर्चस्व की भी लड़ाई है। बाज़ार के वर्चस्व की लड़ाई। भाषाएँ वर्चस्व स्थापित करने में बाधा सिद्ध होती हैं इसलिए बाज़ार भाषाओं को आज समाप्त करना चाहता है— भूमंडलीकरण पर भाषा के संदर्भ में विचार करते हुए सबसे पहले यही कहा जाना चाहिए कि यदि भूमंडलीकरण निरंकुश ढंग से इसी प्रकार जारी रहा, तो विश्व की सैकड़ों भाषाओं का चेहरा बिगाड़ देगा, सैकड़ों भाषाओं को चबा जायेगा और सांस्कृतिक विविधता को उजाड़ देगा। विविधताएँ हमें विशिष्ट बनाती हैं। यह वह तत्त्व हैं जो हमारी अस्मिता को निर्धारित करते हैं। अस्मिताओं के संदर्भ में आज जहाँ नए-नए आंदोलन हो रहे हैं वहीं बाज़ार इन विविधताओं को ही नष्ट कर देना चाहता है। शिक्षा में क्योंकि आज भाषा का महत्त्व नहीं बचा है। भाषा को मात्र माध्यम के रूप में शिक्षा में प्रसारित किया जा रहा है। भाषा की भूमिका सीमित कर दी गयी है। भाषा के साथ जुड़े मूल्य एवं संकल्पनाओं का इस शिक्षा में कोई स्थान नहीं है। यही कारण है कि मानविकी और कला शिक्षा को भी हेय दृष्टि से देखा जा रहा है इसी कारण व्यावसायिक शिक्षा को बहुत वरीयता मिलने लगी है। व्यावसायिक शिक्षा में भाषा की भूमिका केवल संप्रेषण तक सीमित है।

भाषा अध्ययन के क्षेत्र में काम कर रहे अध्ययनशास्त्रियों ने भाषा के माध्यम से कई नये आयामों को स्पष्ट करने का कार्य किया है। हमारे समक्ष कई नयी संकल्पनाएँ आज इन अध्ययनों के माध्यम से प्रस्तुत हुई हैं। नॉम चोम्स्की और सास्युर जैसे भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा से जुड़े कई महत्त्वपूर्ण

पहलुओं को उद्घाटित करने का प्रयास किया है। मनुष्य की भाषा में उसके समाज की भूमिका, भाषा प्रचलन आदि को समझने में इन अध्ययनों ने नयी दिशा प्रदान की है। भाषा के माध्यम से लैंगिक वर्चस्वदिता से लेकर सांस्कृतिक वर्चस्वदिता को समझने की नयी दृष्टि भी इन अध्ययनों ने दी है। वहीं आज विश्व की बहुत-सी भाषाओं के समक्ष अस्तित्व का खतरा उत्पन्न हो गया है। लोग मातृभाषाओं को छोड़कर केवल प्रचलित भाषा को प्राथमिकता दे रहे हैं। भाषा में मात्र संप्रेषण को शिक्षा समतुल्य माना जाने लगा है। शिक्षा को इस तरह संकुचित करना वह भी भाषा के संदर्भ में विचारणीय है। शिक्षा के स्तर पर भाषा को क्योंकि महत्त्व नहीं मिल रहा है इसलिए लोग उन्हें सीखना नहीं चाहते। उन्हें लगता है कि जिस भाषा का कोई आर्थिक लाभ उन्हें नहीं मिल रहा है, उसे सीखना ही क्यों। मातृभाषा में अभिव्यक्ति को कई बार लोग हीनता-बोध से भी जोड़ कर देखते हैं। उन्हें लगता है कि मातृभाषा में अभिव्यक्ति के कारण उन्हें पिछड़ा हुआ समझा जायेगा इसलिए वह प्रचलित भाषा को अपनाने लगते हैं।

शिक्षा में भाषा की भूमिकाओं के साथ बहुत से अन्य पहलू जुड़े हुए हैं। शिक्षा और भाषा के माध्यम से हम किसी समाज की प्रगतिशीलता और मानसिकता को समझ सकते हैं। स्पष्ट है कि भाषा की भूमिका केवल संप्रेषण तक सीमित नहीं है और शिक्षा की भूमिका केवल अर्जन तक सीमित नहीं है। हमारी सोच और सामाजिक संबंधों के निर्माण में शिक्षा और भाषा की महती भूमिका है। शिक्षा में भाषा नीति को लागू करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पूरे देश में एक-सी नीति हो। अलग-अलग शिक्षा नीति भी समाज में विभेद पैदा करती है। समतापूर्ण समाज की स्थापना के लिए समान भाषा नीति, समान शिक्षा नीति की आवश्कयता है। इसलिए इन संदर्भों की गंभीरता को समझना बहुत आवश्यक है — 'पाठ्यचर्या के संदर्भ में भाषा की बात आती है। अगर आप कहते हैं कि पूरे देश के लिए एक समान भाषा नीति है, तो वह सब स्कूलों के लिए भाषा नीति समान नहीं है, तो यह समान स्कूलों के लिए है। यह नहीं कि सरकारी स्कूलों में एक भाषा नीति होगी और प्राइवेट स्कूलों में दूसरी। अगर सब स्कूलों के लिए भाषा नीति समान नहीं है, तो यह समान स्कूल प्रणाली नहीं है और उससे आप समान नागरिकता का निर्माण नहीं कर पाएँगे।' आज केवल सरकारी स्कूलों में मातृभाषा का प्रयोग हो रहा है। यह भाषा उन्नति के लिए नहीं हो रहा है, बल्कि अपने अभावों और कमियों को छुपाने के लिए किया जा रहा है। मातृभाषा सभी विद्यालयों के लिए आवश्यक है न कि सिर्फ़ सरकारी स्कूलों के लिए अत: भाषा नीति का समान नियमन आवश्यक है।

आज शिक्षा के मूल्यों की जब भी चर्चा चलती है तब शिक्षा से उम्मीद की जाती है कि वह भविष्य निर्माण की ठोस पीठिका तैयार करे। आधुनिक शिक्षा मूल्यों में वैज्ञानिक सोच को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया। शिक्षा का मकसद निष्पक्ष एवं वस्तुनिष्ठ और मूल्यपरक होना चाहिए। स्थानीय मूल्य एवं संस्कृति की महत्ता को स्वीकारा गया। इसके बावजूद भाषा के स्तर पर शिक्षा को एक भाषा विशेष से जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है। हाल में ही एक शार्ट फिल्म में नायिका एक गरीब बच्ची से पूछती है कि तुम

क्या बनना चाहती हो, बच्ची नायिका की अंग्रेज़ी से प्रभावित होकर कहती है कि वह बड़े होकर उसके जैसा बोलना चाहती है। भाषा विशेष को शिक्षा का पर्याय सिद्ध किया गया है। ध्यान से देखें तो यह अंग्रेज़ी जो प्रचलन में है उसमें उसकी विशाल सांस्कृतिक संपदा कहीं नहीं दिखती। यह केवल संप्रेषण भर के लिए विकसित अमेरिकी अंग्रेज़ी है। भाषा में तमाम तरह के सूत्र, इतिहास, लोक साहित्य, संघर्ष, पीढ़ियों की यात्राएँ एवं सभ्यता के विकास का रहस्य छिपा होता है। भाषा को केवल संप्रेषण के माध्यम के रूप में सीमित करना बाज़ारीकरण-व्यवस्था का प्रभाव है। शिक्षा में इस तरह के बदलाव के कारण ही बच्चे अपनी विरासत से दूर होते जा रहे हैं। उन्हें अपने सांस्कृतिक मूल्यों का ज्ञान नहीं होता। तथ्यात्मक ज्ञान के अतिरिक्त वह कुछ अर्जित नहीं कर पा रहे हैं। उनकी रचनात्मकता कम हो रही है। छोटी से बड़ी जानकारी के लिए इंटरनेट पर निर्भर हैं। लोक गाथाएँ, गीत, मुहावरें, लोकोक्तियाँ अब सुनाई तक नहीं देती हैं। हम अपनी प्रकृति से भी दूर हो रहे हैं, अपनी स्थानीयता से भी और अपने इतिहास से भी। रोज़गार सृजन और आजीविका चलाने मात्र में शिक्षा और भाषा की भूमिका सिमट चुकी है। हमें हज़ारों किलोमीटर दूर अमेरिकी फ़ैशन और तकनीक की जानकारी मिल जाती है क्योंकि बाज़ार वो बेचने वाला है किंतु अपने ग्रामीण क्षेत्र में उग रहे फल-फूल, हस्तशिल्प और कला का ज्ञान नहीं है। भाषा के माध्यम से वर्चस्व की संस्कृति ने हमें अपने अधीन बना लिया है और हमें उसका ज्ञान तक नहीं है। अगर संतुलन स्थापित न किया गया और अपनी संपदाओं को सहेजने की प्रक्रिया अगर न शुरू की गयी तो हम भविष्य में अपनी पीढ़ी को कुछ भी सौंपने में असफल सिद्ध होंगे।